SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

लोक कला प्रतीकों की चित्रण विधि एवं तकनीकः पूर्वी उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ में

मधु शर्मा, पी.–एचडी., ललित कला विभाग
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
मधु शर्मा, पी.–एचडी.
E-mail : sharma16madhu@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 24/06/2025
Revised on : 26/08/2025
Accepted on : 04/09/2025
Overall Similarity : 00% on 27/08/2025

शोध सार

हमारे देश की वैभवशाली कला एवं संस्कृति का मूलाधार लोक कलाएं है जो धार्मिक आस्थाओं के आधार पर अपनी अद्भुत प्रेरणा के साथ प्रदर्शित होती है। समयानुसार लोक संस्कृति, कला और रीति–रिवाजों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। आधुनिक युग में लोक कला अपने बदलते व परिवर्तित स्वरूप नित नये प्रयोगों के साथ स्वयं को स्थापित कर रही है। लोक कलाएं अपने सीमित दायरे से बाहर आकर आधुनिक रूप में फल–फूल रही है तथा हमारी सांस्कृतिक धरोहर को पीढ़ी–दर–पीढ़ी स्थानान्तरित कर आगे की ओर बढ़ा भी रही है। कला की उन्नति एवं विकास में लोक कला का अत्यधिक महत्व है। लोक कला से तात्पर्य उन स्थान विशेष की कला से है, जिसे ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षित लोगों द्वारा अपने घर के आंगन, दीवार, ढ़ेहरी (मुख्य दरवाजा) आदि स्थान पर कुछ अनगढ़ आकृतियों द्वारा अलंकृत करते है। इनका रूप अंकन मुख्यतः धार्मिक कार्यों, विवाह, मुण्डन आदि उत्सवों व त्यौहारों पर चौक पूरना, रंगोली, एहपन व अल्पना आदि बनाकर घरों को अंलकृत करते है। लोक कलाओं में बहुत ही साधारण एवं सरल रेखांकनों द्वारा आकृतियों का निर्माण कर अपनी सरल सहज भावनाओं को अभिव्यक्त करते है।

मुख्य शब्द

लोक कला, प्रतीक, संस्कृति, आस्था, परम्परा एवं अभिव्यक्ति.

लोक कला की उत्पत्ति व्यवहारिक ज्ञान, सामान्य जन समुदाय की अनुभूति की अभिव्यक्ति है जिसमें धार्मिक भावना, विश्वास, आस्था, अन्धविश्वास, भय निवारण एवं अलंकरण प्रवृत्ति आदि की रक्षा के विचार निहित होते है। मानव सभ्यता का विकास जैसे–जैसे होता गया लोक कलायें भी स्वतः विकसित होती गयी।

लोक कलाओं की महत्ता केवल सौन्दर्य दृष्टि से नहीं बल्कि अपने अन्दर मंगल भाव निहित रखना प्रमुख है। प्रारम्भ में प्रागैतिहासिक काल के शैल चित्रों से मानव सभ्यता एवं रहन–सहन का पता चलता है साथ ही उनके द्वारा उकेरी गयी शैल चित्र उनके मनोभावों, प्रकृति के प्रति आस्था व विश्वास को भी प्रकट करती है। कहीं–कहीं पर प्रतीक के रूप में स्वास्तिक, ज्यामितीय आकृतियाँ एवं जादू–टोने के भी साक्ष्य प्राप्त होते है। मानव का जीवन प्रारम्भ से ही प्राचीन काल की संस्कृतियों, रीति–रिवाजों, मान्यताओं, संस्कारों एवं प्रवृत्तियों आदि से जुड़ा हुआ है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक सदैव कोई न कोई धार्मिक, सांस्कृतिक, पारम्परिक, अनुष्ठानिक, विभिन्न तीज–त्यौहारों, उत्सवों एवं पर्वों आदि पर अनेक लोक कला, लोक कथा, लोक गीत तथा लोक नृत्य इत्यादि प्रचलित रहती है।

लोक कला

लोक कलाओं के कई आयाम होते है जिनमें अपने अलग–अलग लोक मान्यतायें होती है। इनमें अनेक लोक प्रतीकों का समावेश होता है। यह प्रतीक अपने अन्दर अथाह अर्थ छुपाये हुए रहते हैं। लोक प्रतीकों को विभिन्न स्वरूपों जैसे– चित्र, मूर्ति, अल्पना एवं चौक पूरना आदि के द्वारा विभिन्न चित्र पटल पर जैसे– भित्ति (दीवार) एवं भूमि (जमीन) आदि स्थलों पर सृजित किये जाते है। इनके सृजन हेतु कई माध्यमों जैसे– चौरठ (चावल के आटे को पानी में घोलकर), गेरू, फूल, आटा, हल्दी, गोबर और मिट्टी आदि का प्रयोग किया जाता है।

चौक पूरना

सौन्दर्य की दृष्टि से पूर्वी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में घरों को सजाने की प्रथा है। घरों के द्वार (देहरी) पर तथा विभिन्न स्थानों पर विभिन्न उत्सवों पर विविध अलंकरण (बेल–बूटे) बनाये जाते हैं। विवाह के समय कलश, कमल, मोर, हाथी एवं हथेलियों की छाप आदि बनाने की प्रथा प्रचलित है तथा घर की चौखट पर घर की स्त्रियाँ व लड़कियाँ कुछ ज्यामितीय अलंकरणों को अंकित करती हैं। हाथ से बनी हुई विभिन्न वस्तुओं जैसे– मिट्टी, लकड़ी की वस्तुओं, बाँस व बेत की सजावटी वस्तुओं, कपड़ों व धागों से निर्मित वस्तुओं से घर को सुसज्जित करती है। लोक कला प्रतीकों के चित्रण हेतु विभिन्न चित्र पटल जैसे– भित्ति चित्रण, भूमि चित्रण, पट चित्रण एवं अन्य चित्र पटलों का प्रयोग किया जाता है साथ ही इन पटलों पर चित्रण करने की विधि

रंगोली

और तकनीक भी भिन्न–भिन्न होते है, जो निम्नवत् हैः

भित्ति चित्रण

भारतीय लोक कलाओं में भित्ति चित्रण विधि सबसे प्राचीन है। प्रागैतिहासिक युग के मानव पहले मिट्टी के बर्तन ही बनाते थे लेकिन कुछ समय पश्चात् मानव ने मिट्टी का प्रयोग दीवारों पर चित्रांकन हेतु प्रयोग करने लगे। भित्ति चित्रण में ज्यामितीय आकार द्वारा कलापूर्ण अभिप्रायों का प्रयोग होता है साथ ही पारम्परिक आकल्पन, सहज बनावट और अनुकरण के आधार पर सरल आकृतियों द्वारा उनमें निहित स्वच्छन्द आकल्पन और रेखीय ऊर्जा सदैव आगे बढ़ने के भाव और चाक्षुष सौन्दर्य को प्रकट करती है।

भित्ति चित्रण, ग्रामीण एवं आदिवासी जातियों द्वारा अभ्यास की जाने वाली ऐसी लोक कला है जो गाँव की स्त्रियों के द्वारा वहाँ की कच्ची मिट्टी से बनी झोपड़ियों की दीवारों पर गोबर, चूना व मिट्टी आदि को मिलाकर तैयार की जाती है एवं घर की दीवारों, मूर्तियों तथा विविध आकल्पनों और भित्ति के कलात्मक स्वरूप में सुसज्जित की जाती है। धार्मिक एवं जातीय विश्वासों के अनुरूप उनके सृजन में प्रकृति के विभिन्न दृश्य, पशु–पक्षी, मनुष्य और देवी–देवताओं की सहजता अनौपचारिक उपस्थिति और भागीदारी को ज्यामितीय रेखाओं एवं प्रतीकों द्वारा सृजित किया जाता रहा है।

दीवारों पर बनायी गयी कलाकृतियों में पास–पड़ोस का अति परिचित संसार अपने सामाजिक विश्वासों को प्रतीकों द्वारा अंकित कर सरल और आडम्बरहीन अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते है। अपर्याप्त साधन के कारण वहाँ प्रचलित विभिन्न त्यौहारों और धार्मिक अवसरों के समय अपने घर की सज्जा हेतु दीवारों पर कच्ची मिट्टी द्वारा पेड़–पौधों या पशु–पक्षियों आदि की आकृतियाँ बनाकर उनमें बहुत ही मनोरम रंगों से रंगकर अपने–अपने घरों को सजाते है।

काशी की लोक कला

पूर्वी उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत भित्ति चित्रण में मुख्य रूप से 'कोहबर चित्रण' आता है साथ ही अनेक प्रकार के चित्र दीवार पर बनाने की परम्परा प्रचलित है जैसे काशी के अधिकांश घरों की दीवारों पर लोक चित्रण होता है जिन्हें आज भी देखा जा सकता है। काशी में गरीब व्यक्ति अपनी झोपड़ी में भी गोबर से लीप कर दीवार पर गणेश भगवान को अंकित करते है अर्थात् यहाँ के लोक जीवन में कला अलंकरण न होकर अंतःकरण बन गयी है जिससे अपनी परम्परा के रूप में धारण कर निरन्तर अपनी अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित करते है। अतः काशी में लोक कलाकार (चित्रकार, शिल्पकार आदि) अपनी पारम्परिक कला को बड़े यत्नपूर्वक सहेजे हुए है। मांगलिक कार्यों (जन्मोत्सव, उपनयन, विवाह एवं यज्ञोपवीत आदि) पारम्परिक लोक उत्सवों में प्रत्येक परिवार के गृहस्वामी द्वार पर, घर की दीवारों आदि पर शुभ प्रतीक के रूप में लोक कलाकारों द्वारा लोक कला चित्रण कराना, पारिवारिक उत्सवों का अभिन्न अंग था। भित्ति चित्रण में गणेश के दोनों ओर रिद्धी–सिद्धी, मछलियाँ तथा दीवारों पर द्वारपाल, कहीं–कहीं घर की दीवारों पर एक तरफ हाथी एक तरफ घोड़ा चित्रित होता है इसके अलावा ऊँट, खरगोश, बाघ, हिरन, तोता, मंगल कलश, केले का वृक्ष, नारियल, फूल एवं लतायें आदि भी चित्रित होते है।

इसी प्रकार भित्ति चित्रण में कोहबर चित्रण को यहाँ 'कोहबर लेखन' कहा जाता है। ये आकृतियाँ इतनी स्पष्ट और सरल होती है कि उनको आसानी से पढ़ा व समझा जा सकता है। बिहार में भी इसका प्रचलन अत्यधिक है। विवाह के समय कोहबर बनाने की प्रथा प्रचलित है परन्तु जिस विधि–विधान और मनोयोग के साथ अंकन होता है अन्यत्र प्रतीत नहीं होता। कोहबर तीन भागों में चित्रित होता है, तीनों स्थानों पर अलग–अलग प्रकार के चित्रांकन का विधान है। इसका उद्देश्य नव दाम्पत्ति के भावी जीवन की मंगल कामना के साथ वंशवृद्धि की कामना होती है।

भित्ति चित्रण कोहबर आयताकार या चतुर्भुजीय आकार का होता है। इनमें मुख्यतः तोता, बाँस, कमल का पत्ता, कछुआ, मछली, मैना एवं योगिन आदि का अंकन प्रचलन में है। कोहबर चित्रण में तांत्रिक आकृतियों का भी सांमजस्य व समावेश होता है। कोहबर चित्रण निपुण महिलाओं द्वारा विवाह जैसे मांगलिक अवसरों पर विशेषकर बनाया जाता है। जल रंगों या महावर से रूई की तूलिका या अनार की कलम से कोहबर के ये चित्र बनाये जाते है।

कोहबर

कुछ राज्यों में तो मात्र एक ही रंग से तथा रेखाओं के माध्यम से ही यह भित्ति चित्रण होता है। बदलते परिवेश में कोहबर चित्रों के विषय में कहीं–कहीं थोड़ी आधुनिकता आने से, समयाभाव और अरूचिवश इनका अंकन बहुत कम हो गया है।

भूमि चित्रण

भारतीय लोक कला में भूमि चित्रण (अलंकरण) की प्रथा वैदिक युग से मानी जाती है। लोक जीवन में मानव धरती को माँ स्वरूप मानते हुये पूजते एवं सजाते हैं। मातृभूमि इसका परिमार्जित एवं सांस्कृतिक रूप है। लोक जीवन में मानव धरती माता का श्रृंगार तथा अलंकरण करके उनके प्रति अपनी श्रद्धा तथा भक्ति भाव को प्रदर्शित करता है। भूमि चित्रण को भिन्न–भिन्न स्थानों में यह भिन्न–भिन्न नामों से जाना जाता है जैसे उत्तरप्रदेश के बृज में साँझी, पहाड़ी क्षेत्र में आजी, गुजरात में साथिया, राजस्थान में माण्डना, महाराष्ट्र में रंगोली, आंध्र प्रदेश में सुग्गु, दक्षिण भारत में कोलम्, बंगाल व असम प्रदेश में अल्पना तथा पूर्वी उ0 प्र0 में सूखे या गीले आटे से धरती को सजाने को अहपन या चौक पूरना, ऐपन एवं सतिया आदि भी कहते है।

भूमि चित्रण अति प्राचीन प्रथा है। इसकी रचना मांगलिक पर्वों, विवाह के शुभ अवसर तथा लोकोत्सवों के समय स्त्रियों या कुंवारी कन्याओं द्वारा भूमि पर बनाया जाता है। भूमि चित्रण की अलंकरण विधियों में विभिन्न रंगों एवं उनके चूर्ण से, घर के आंगन, कक्ष के फर्श, पूजा के स्थान तथा गृह–द्वार पर आलेखन से सजाया जाता है। इसको अंकित करने का कोई शास्त्रीय विधान नहीं है जबकि यह कार्य परम्परागत रूप से प्रचलित एक लोक शैली है जिसका मुख्य उद्देश्य धरती माँ अर्थात् भूमि को रंगों से सजाकर सौन्दर्य एवं आकर्षण प्रदान कर धन्यवाद अपर्ण करना है। यह अलंकरण धार्मिक भाव से ओत–प्रोत होकर आदर एवं श्रद्धा से सृजित किये जाते हैं जिसमें आध्यात्मिक दृष्टि से पारलौकिक शक्तियों की पूजा एवं आराधना करना सम्मिलित रहता है। यह भूमि अलंकरण परम्परा कितनी पुरानी है और कब से प्रचलित है यह कह पाना असम्भव है।

गोवर्धन पूजा

भूमि पर गोबर, मिट्टी से लीपकर या पक्की जमीन को धो–पोछकर उसके ऊपर गेरू या चौरठ (भीगे चावल को पीस कर) बनाया जाता है। इसे रंगीन बनाने के लिए प्राकृतिक रंगों व जलरंगों का प्रयोग किया जाता है। मांगलिक पर्वों पर सूखे सिंदूर व हल्दी का प्रयोग आवश्यक रूप से होता है। पूर्वी उत्तर

प्रदेश में भूमि चित्रण के अन्तर्गत गोवर्धन पूजा के दिन स्त्रियाँ गाय के गोबर से चौकोर (वर्गाकार) में गोधना एवं अन्य सम्बन्धित आकृतियों को बनाती है तथा उसके चारों ओर बैठ कर भाई की लम्बी उम्र के लिए पूजा करती है उसी प्रकार भैया–दूज के समय भूमि पर गोबर या चौरठ (चावल के आटे का पतला घोल) से चौकोर आकृति बनाकर उसमें यम, सील–बट्टा, साँप, तुलसी का पौधा, सूर्य, चन्द्र–तारे, सीढ़ी, भैया–बहन का अंकन प्रतीकात्मक स्वरूप अंकित करके पूजा करती है। इस पर्व में मांगलिक लोक भावना निहित रहती है।

लोक चित्रकला में उत्सव या पर्व के समय परम्परागत रूप से पूर्व निश्चित अरिपन (अहपन) ही बनता है जैसे विवाह के समय कमल, मछली, पुरइन का पत्ता, बाँस आदि का अंकन होता है। यह सभी प्रतीक वंश वृद्धि के प्रतीक है। सत्यनारायण पूजा के समय अष्टदल कमल विष्णु पद, शंख, चक्र, गदा, पदम् आदि आकृतियों का अंकन होता है। लक्ष्मी पूजा में त्रिकोणात्मक अरिपन (अहपन) की प्रथा है। दशहरे पर कोसा अरिपन, नाग पंचमी पर नागफण अरिपन बनाने का विधान है। इसी प्रकार अनुष्ठानिक एवं मांगलिक कार्यों पर मान्यतानुसार भूमि अलंकरण स्त्रियों व कुंवारी कन्या द्वारा प्रतिपादित होता है। बिहार, राजस्थान, उत्तर प्रदेश में भित्ति चित्रण और भूमि अलंकरण दोनों में प्राकृतिक तत्वों का समावेश रहता है।

पट चित्रण

भारत में पट चित्रों की परम्परा अति प्राचीन है। पाल काल में कथाओं अथवा महाकाव्यों को चित्रित करने की परम्परा ताड़ पत्र पर प्रारम्भ हो गयी थी तथा अपभ्रंश शैली में कपड़े पर लघु चित्रण होने लगा था। ये कुण्डलित स्क्रॉल के रूप में होते थे। धीरे–धीरे लोक संस्कृति पर इसका प्रभाव पड़ा और यह राजस्थान में बापू के फड़, बंगाल में कालीघाट के पट चित्र के रूप में विकसित हुई। बिहार के मिथिलांचल में पट चित्र की परम्परा प्रारम्भ हो गई साथ ही साथ नेपाल में भी पट चित्रों की परम्परा प्रचलित हो गयी।

पट चित्र

धीरे–धीरे पट चित्रों के स्वरूपों में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। कुण्डलित चित्रों की प्रथा कम हो गयी सर्वप्रथम ताड़ पत्रों पर फिर रेशमी सूती कपड़े पर धार्मिक कथाओं व काव्यों का चित्रण होता था परन्तु शताब्दी के पाँचवें दशक तक यह कम हो गये। कागज की खोज के पश्चात् पट चित्रों के स्वरूप में भी परिवर्तन आ गया फिर छापा चित्रण ने इसकी जगह ले ली। मुख्य रूप से बिहार में पट चित्र काफी प्रचलित है इसी का विकसित व परिवर्तित रूप वर्तमान के वस्त्रों जैसे– साड़ी, सूट, पर्दे व चादर आदि पर लोक प्रतीकों का अंकन देखने को मिलता है।

अन्य चित्रण पटल

भारतीय लोक कला को जीवित रखने में चित्रण पद्धति का विशेष महत्व है। लोक कला चित्रण तकनीकि में भूमि चित्रण, भित्ति चित्रण एवं पट चित्रण के साथ–साथ अन्य आधार पट प्रचलित है जिसके माध्यम से हम अपनी लोक कला का अंकन करते है। मानव ने सदैव अपने भावों को व्यक्त करने के लिये विभिन्न संसाधनों एवं माध्यमों का प्रयोग किया है। विकास के स्तर से लोक कलाओं और प्रतीकों में सदैव परिवर्तन होता रहा है। उपलब्धता के आधार मानव अपना लोकाभिव्यक्ति विभिन्न चित्रण पटल पर करता है जैसे– शैल, भित्ति, भूमि, कागज एवं कपड़ा आदि। अन्य चित्रण पटल में उन वस्तुओं को सम्मिलित किया जाता है जो दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुएं होती है। उनको लोक प्रतीकों द्वारा विभिन्न रंगों से अलंकृत व सुसज्जित कर उपयोग में लाते है जिसमें क्षेत्र विशेष का अंकन समाहित रहता है। विभिन्न खिलौने, दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाले वस्तुओं पर अंलकरण, आभूषण,

बेत का समान

सजावटी वस्तुयें

साज–सज्जा की वस्तुयें, जूट, बेत का सामान, लकड़ी या मिट्टी के खिलौने, मूर्तियाँ एवं वास्तुकला मंदिरों के दीवारों आदि के माध्यम से लोक कलाओं के प्रतीकों का अध्ययन सम्भव है तथा विभिन्न चित्रण पटल होने के बावजूद इनका चित्रण विधि विशेष होती है।

निष्कर्ष

पूर्वी उत्तर प्रदेश की प्रचलित लोक कलाओं एवं प्रतीकों का प्रयोग निरन्तर धार्मिक, पारम्परिक एवं सांस्कृतिक कर्मकाण्ड में होता रहा है। लोक कला चित्रण में बनावटीपन का कोई स्थान नहीं है। यह हृदय के भाव को सरल रेखांकन द्वारा अभिव्यक्त करती है। प्रायः स्त्रियाँ व लडकियाँ ही इन परम्पराओं को जीवित रखे हुए है जो अपने आन्तरिक भावों को सरल रेखा, रूप एवं रंग आदि तत्वों के माध्यम से चित्रित करती है। इसके अतिरिक्त अन्य लोक कलाओं में सजावटी वस्तुयें, उपयोगी वस्तुयें, लकड़ी और मिट्टी के बर्तनों व खिलौने, घास–फूस एवं जूट से बनी कलाकृतियाँ, वस्त्र अलंकरण तथा आभूषण आदि को निर्मित करके कला कौशल का प्रदर्शन करती है। आधुनिक परिवेश में कुछ–कुछ स्थानों पर लोक तत्वों को समाहित कर लोक पर्व, उत्सव एवं विवाह आदि में शुभ व मांगलिक प्रतीकों का प्रयोग पारंपरिक रूप से करने का प्रयास करते हैं इसलिए वर्तमान में लोग रंगोली व चौक आदि से घर, आंगन को सजाते हैं विशेषकर दीपावाली तथा विवाह के अवसर पर घरों को फूलों से सजाते हैं। आज भी कहीं–कहीं पर प्राकृतिक तत्वों जैसे– गेरु, चूना, गोबर आदि शुभ प्रतीकों का अंकन अपने लोक मान्यता व आस्था के अनुसार अंकित करते हैं। लोक चित्रकला की सुख–समृद्धि, सुरक्षा, उन्नति व अवनति नारी समुदाय पर ही आश्रित है किंतु शिक्षा एवं आधुनिकता का प्रभाव जैसे–जैसे बढ़ने लगा वैसे–वैसे लोक कथायें, लोक गीत, लोक नृत्य व लोक चित्रकला भी उसी अनुपात में लुप्त हो रही हैं।

आधुनिकतावश इन प्रतीकों के माध्यमों व इनको बनाने की तकनीकि में भी परिवर्तन स्पष्ट रूप से देख जा सकता है। प्रारम्भ में रीति–रिवाजों में बनने वाले लोक प्रतीक प्रायः आटा, हल्दी, चावल का आटा चौरठ, गेरू, मिट्टी व गाय के गोबर इत्यादि से बनाये जाते थे परन्तु वर्तमान में इनके माध्यमों में भी परिवर्तन देखने को मिलता है जैसे तीज त्यौहारों में भगवान की मिट्टी की मूर्ति स्त्रियाँ स्वयं अपने हाथों से बनाया करती थी परन्तु आज बाजार में साँचे से बनी मिट्टी की मूर्तियाँ सरलता से मिलने लगी है इसी प्रकार भूमि पर रंगोली या चौक पूरना को पारम्परिक रंग

से न बनाकर बाजार में बिकने वाले स्टिकरों से बनाया जाता है। साथ ही गृह सज्जा हेतु विभिन्न सामग्री जैसे बंधनवार, गुलदस्ता, वॉल हैंगिग, डलिया व टोकरियाँ आदि को भी अपने हाथों से बनाया करती थी परन्तु अब यह सभी वस्तुयें बाजार में मशीन से बनने वाली वस्तुओं ने स्थान ले लिया है। इन सभी लोक कला, प्रतीक, धार्मिक रीति–रिवाज, परम्परा एवं संस्कृति को सुरक्षित व संयोजित करने की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके लिए लोगों के साथ–साथ सरकारों को भी मिल कर प्रयास करने की आवश्यकता है जिससे हमारी पारम्परिक रीति–रिवाज एवं संस्कार आगे आने वाली पीढी को सरलता से हस्तान्तिरित और संरक्षित रह सके।

सन्दर्भ सूची

1. काशी की भित्ति चित्रकलाः एक लुप्त होती विरासत, http://kashikatha.com, Accessed 04/06/2025.
2. मिश्र, अवधेश (अक्टूबर, 2000) *कला दीर्घा,* उत्कर्ष प्रतिष्ठान, गोमती नगर, लखनऊ, पृ. 12–13।
3. वर्मा, अविनाश बहादुर एवं वर्मा, अमित (2020) *कला एवं तकनीक,* प्रकाश बुक डिपो, बरेली, पृ. 49।
4. मिश्र, अवधेश (अक्टूबर, 2000) *कला दीर्घा,* उत्कर्ष प्रतिष्ठान, गोमती नगर, लखनऊ, पृ. 11–12।
5. वर्मा, अविनाश बहादुर एवं वर्मा, अमित (2020) *कला एवं तकनीक,* प्रकाश बुक डिपो, बरेली, पृ. 50।
6. मिश्र, अवधेश (अक्टूबर, 2000) *कला दीर्घा,* उत्कर्ष प्रतिष्ठान, गोमती नगर, लखनऊ, पृ. 13–14.
7. चतुर्वेदी, मंजुला (2009) *भारतीय लोककला के अभिप्राय,* कला प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 17।
8. गुप्त, हृदय (2018) *चौक पूरना (उत्तर प्रदेश की भूमि–अंकन लोक कला),* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
9. अग्रवाल, श्याम बिहारी (जनवरी–मार्च, 2002) *कला त्रैमासिक,* लोक कला विशेषांक, राज्य ललित कला अकादमी, उत्तर प्रदेश, पृ. 17।

****